REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 6 | MARCH - 2018

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के इतिहासाधारित मिथक नाटक में चित्रित समस्याएँ

डॉ. अशोक बाचुळकर
सहाय्यक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आजरा महाविद्यालय, आजरा (महाराष्ट्र).

भूमिका

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लोकगाथा एवं पुराण प्रसंगों के साथ-साथ ऐतिहासिक पात्रों को आधार बनाकर नाटक की रचना की है, जैसे - 'अरुण कमल एक'। आर्यावर्त्त की स्थापना में चाणक्य के योगदान को भूलाया नहीं जा सकता है। उसी ऐतिहासिक चिरंतन घटना को युगीन भारत के राजनीतिक परिवेश से संबद्ध करते हुए प्रस्तुत करने का डॉ. लाल ने सफल प्रयास किया है। आज की समस्याओं को उपस्थित करते हुए उनके उत्तर भी नाटककार ने प्रस्तुत नाटक द्वारा दिए हैं। पहले 'गुरु' शीर्षक से लिखा गया नाटक संशोधित करके 'अरुण कमल एक' रूप में प्रस्तुत किया गया है।

चाणक्य और चंद्रगुप्त को लेकर अनेक भारतीय भाषाओं में नाटक लिखे गए हैं। फिर भी डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने चाणक्य को लेकर ही प्रस्तुत नाटक की रचना की है। स्पष्ट है कि वर्तमान भारत की समस्याओं के समाधान नाटककार अतीत में खोजना चाहता है। चाणक्य के जीवन का मुख्य लक्ष्य था - एकसंघ भारत, जो आज की अनिवार्यता है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड को देखकर नाटककार व्यथित होता है। वह वर्तमान नेतृत्व भारत को एकसंघ रखने में असफल देखता है, तब चला जाता इतिहास के पास। वही इतिहास उसे चाणक्य जैसे 'गुरु' से मिलाता है और फिर वही गुरु हम सब भारतीयों का मार्गदर्शक बन जाता है। इस बात को हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि चाणक्य जैसे गुरु ही इस देश को एकसंघ रख सकते हैं। अत: हमारे जीवन में शिक्षा और गुरु का स्थान सर्वोपरि है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का यह नाटक "ऐसी विद्या और ऐसी ही शिक्षा प्रणाली की खोज है जहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तिगत संदर्भ से ऊपर उठकर दूसरे को जानता है और इस प्रकार व्यक्ति की सीमाओं को तोडकर समष्टि में प्रवेश पाता है, व्यक्तिगत भावनाओं पर विजय प्राप्त करता है और इस प्रकार जीवन और जगत् के बंधनों से जीवन और जगत् में रहकर भी मुक्ति पाता है। 'चाणक्य' डॉ. लाल का वह आदर्श चरित्र है जिसके द्वारा वे यह यात्रा पूरी करते हैं।"[1] प्रस्तुत नाटक में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने जिन समस्याओं की चर्चा की है, वे इस प्रकार हैं ङ

शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियाँ

देश की उन्नति के द्वार खुलते हैं, शिक्षा द्वारा। मानव का उद्धार होता है - शिक्षा द्वारा। अज्ञान के अंधकार को मिटाकर उसे प्रकाश में ले जाने का कार्य शिक्षा ही करती है। शिक्षा से ही मुक्ति संभव है। इसलिए मानव जीवन में शिक्षा का अनन्यसाधारण स्थान है। दुनिया का प्रत्येक राष्ट्र आज इस दृष्टि से प्रयत्नशील है कि शिक्षा की गंगा सभी के पास पहुँचे। कोई इससे वंचित न रह जाए।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने हमारी शिक्षा व्यवस्था को नजदीकी से देखा। इसकी दुर्दशा देखकर वे व्यथित हो गए। हमारी शिक्षा व्यवस्था हमें दूर ले जाती है, मनुष्य से। हमें दूर ले जाती है, अपने समाज और देश से। अपने परिवेश से हमें तोडती है। जबकि शिक्षा की सार्थकता जुडने में है। जुडना परिवार से और पहचानना अपने आपको, लेकिन हमारे दुर्भाग्य से ऐसा तो होता नहीं। यही है हमारी शिक्षा व्यवस्था की करुणा। यही है इसकी सीमा और दुर्भाग्य। "छात्र अपनी शिक्षा की परिधि में अपने यथार्थ से कट जाता है। वह टूट जाता है अपने परिवेश, देश और समाज के यथार्थ से। और इससे भी ज्यादा गंभीर बात यह कि वह बाहर जाकर बाहर को नहीं देख पाता, वह अपने आपको ही बाहर पर आरोपित कर देता है।"[2] इस पर लाल यह उपाय सुझाते हैं कि हमारे छात्र बाहर की दुनिया को देखें। इसीलिए चाणक्य अपने समस्त शिष्यों को बाहर जाकर देखने की आज्ञा देते हैं। बाहर यानी अपना परिवेश, अपना समाज, अपना राष्ट्र।

राष्ट्र जब संकट में होता है तो प्रत्येक विद्यार्थी को प्राणार्पण के लिए तत्पर रहना चाहिए। गुरु चाणक्य क्रियात्मक राजनीति में विद्यार्थियों के सहभाग के विरुद्ध थे। बाद में वे देखते हैं कि आर्यावर्त्त संकट में है तब चाणक्य अपने शिष्यों को परामर्श देते हैं कि वे राजनीति में क्रियात्मक रूप में सहभागी हो। कारण "यवन देश से जो यह अलक्षेंद्र विश्वविजय के लिए चला है, वह आर्य-मर्यादा का विरोधी है। उससे हम सबको लोहा लेना ही होगा। इस संकटकाल में हमें अपने आश्रमों से बाहर निकलकर सक्रिय राजनीति में प्रवेश करना होगा।"[3] देश में राजसत्ता निष्क्रिय बन जाती है तब हम हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठ सकते हैं। देश के नागरिक होने के नाते हमें इस बात का विरोध करना चाहिए। जयप्रकाश नारायण ने विद्यार्थियों की सहायता से बहुत बडा आंदोलन छेडा था, तत्कालीन निरंकुश राजसत्ता के विरुद्ध। सरकार को गलत काम करने से रोकने की सामर्थ्य विद्यार्थियों में है। इसीलिए चाणक्य हमेशा अपने शिष्यों को राजनीति से दूर रहने की सलाह देते थे, वही गुरु समय आने पर क्रियात्मक राजनीति में सहभाग लेने की अनुमति अपने शिष्यों को देते हैं। चाणक्य के अनुसार "वह विद्या किस काम की, जो अर्थकारी न हो, वह ज्ञान निरर्थक है जो विमुक्ति न दे। इसलिए अब वह समय आ गया है, जब तुम अपने पोथी-पत्रों को सँभालकर रख दो और आर्यभूमि पर शासन कर रही विदेशी यवन शक्ति से युद्ध करने के लिए निकल पडो।"[4]

चाणक्य का मानना है कि समस्त देशवासियों के मन में जागरुकता का भाव निर्माण होना चाहिए। इसलिए वे यह राष्ट्रीय दायित्व गुरुकुल के अध्यापकों पर सौंपते हैं। उन पर देश में सर्वत्र फैलकर जनता में नवजीवन के उद्बोधन के लिए दैन्य, पराजय और निराशा के विरुद्ध प्रजा में विद्रोह का प्रादुर्भाव करने की जिम्मेदारी सौंपते हैं। ये सभी जनता को बताते हैं कि दास जीवन पशु जीवन है, मनुष्य का नहीं। स्पष्ट है कि क्या गुरु, क्या शिष्य सभी को इस यज्ञ में सहभागी होना पडता है। राष्ट्र के उद्धार में गुरु का महत्त्व कितना है, यह नाटककार ने यहाँ रेखांकित किया है।

आज की तारीख में बहुत से विद्यार्थी शिक्षा स्वदेश में लेते हैं। जिन पर सरकारी खजाने से करोडों रुपए खर्च होते हैं। यही विद्यार्थी पढ-लिखकर अच्छी-खासी तनख्वाह के लोभ से सेवा विदेशों में करते हैं। अपने ज्ञान का उपयोग दूसरे राष्ट्रों के लिए करते हैं। इस बात पर भी हमें गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए। राष्ट्र का विकास शिक्षा पर निर्भर करता है। इसीलिए चाणक्य कहते हैं, "शिक्षा किसी भी राष्ट्र का मेरुदंड है। (रुककर) गुरु-शिष्य, विद्या और परिवेश शिक्षा कमल के षट्दलों को संग्रथित रखनेवाला वह तत्त्व है जिसके अभाव में सब दल बिखर जाते हैं।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की दृष्टि में शिक्षा, शिष्य और गुरु का राष्ट्र की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अत: शिक्षा व्यवस्था जो राष्ट्र का मेरुदंड है, उसके साथ किसी भी तरह का खिलवाड घातक है।

द्रष्टा नेतृत्व का अभाव

हमारे देश की आबादी एक सौ दस करोड से भी ऊपर है। दिन-ब-दिन बढनेवाली आबादी हमारे लिए एक गंभीर समस्या बन गई है। पचास प्रतिशत से अधिक लोग दरिद्री रेखा के नीचे के हैं। बहुत से लोग एक वक्त का ही भोजन लेते हैं। कई लोग भूखे पेट सोते हैं। सामान्य जनता की प्राथमिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो रही हैं। भूखमरी, निवास, बेरोजगारी, नशापन, बलात्कार, अपराधीकरण, नैतिकता का - हास, आतंकवाद, नक्सलवाद, पर्यावरण जैसी कई समस्याओं ने हमें चारों तरफ से घेर लिया है।

खाने को भरपेट नहीं, पीने को शुद्ध पानी नहीं मिल पा रहा है। बिजली सोने के बाद आती है, जो जगने से पहले गायब हो जाती है। किसानों की आत्महत्याओं में पॅकेज के बावजूद भी कमी नहीं आई है। विदेशी ताकतें हमें बार-बार डरा-धमका रही हैं। और तो और नक्सलवादी आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया है। अनेक राज्य विघटन के कगार पर हैं। भाषावाद, क्षेत्रीयतावाद बार-बार अपना सिर ऊपर उठा रहे हैं। लोकतंत्र त्रिशंकु अवस्था में है। मातृभाषा, राष्ट्रभाषा का स्थान गौण होकर गुलामी की भाषा महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। विभिन्न संप्रदायों के बीच ईर्ष्या, द्वेष एवं नफरत की भावना बढती ही जा रही है। वर्णवर्चस्ववाद की दीवारें दिन-ब-दिन लंबी-चौडी हो रही हैं। संकुचित राष्ट्रवाद की भावना बलवती होती जा रही है। ये सभी समस्याएँ एक दिन में नहीं उपजी हैं।

कुछ इने-गिने ऐसे नेता हो गए जो इन सबसे निपटना जानते थे, परंतु व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति हेतु ऐसे नेताओं को सदैव दबा-कुचलाया गया। शिक्षा क्षेत्र के माध्यम से ऐसा व्यक्तित्व उभरकर आ सकता था, परंतु हमारा दुर्भाग्य कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था ही उधार की है। कोई ऐसा नेतृत्व नहीं है आज, जिसे हम अपना आदर्श बना सके। हम अंतर्मन में ऐसे नेतृत्व, ऐसे गुरु की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं, जो आज के भटके हुए समाज का दिग्दर्शन करा सके।

द्रष्टा नेतृत्व बहुत आगे की सोचता है। वह केवल अपने युग तक नहीं देखता है। अपने घर-परिवार और अपने जीवन तक उसकी दृष्टि सीमित नहीं होती है। वह तो युग-युग के हित का विचार करता है। अनेक पीढियों के कल्याण का विचार करता है। ऐसा ही व्यक्तित्व है, गुरु चाणक्य का।

गुरु चाणक्य का कार्य है - विद्यादान, परंतु जब देश खतरे में होता है, तब अपने निर्धारित दायित्वों के अलावा भी राष्ट्र की रक्षा हेतु, मुक्ति हेतु कार्य करना वे आवश्यक मानते हैं। दूर-दूर तक जब कोई द्रष्टा नेतृत्व नजर नहीं आता तब चाणक्य राष्ट्र की रक्षा हेतु आगे आते हैं।

अपने शिष्यों पर दायित्व सौंपते हैं। समय-समय पर उनका मार्गदर्शन करते हैं। चंद्रगुप्त मोहवश कभी-कभी अपने कर्त्तव्य से च्युत होने लगता है, तब उसे सही मार्ग पर लाने का कार्य गुरु चाणक्य करते हैं। अपने शिष्यों को वे समझाते हैं कि राष्ट्र के लिए प्रत्येक को अपने अहं की बलि देनी होगी।

इतना ही नहीं, बल्कि विदेशी आक्रमण के विरुद्ध अपने समस्त शिष्यों एवं तक्षशिला के आचार्यों को लोगों से संपर्क करने के निर्देश वे देते हैं। वे दूरदृष्टि से ही जान जाते हैं कि यवनों से राष्ट्र की रक्षा के लिए सभी को बलिदान के लिए भी तैयार रहना है। कारण बिना बलिदान के स्वतंत्रता हासिल नहीं की जा सकती है।

चाणक्य के लिए राष्ट्रप्रेम ही सबकुछ है। माहालि और चाणक्य का यह संवाद दृष्टव्य है ङ

"माहालि : गुरुदेव आप तो इतने महापराक्रमी, समर्थ पुरुष हैं, कहीं प्रेम क्यों नहीं कर लेते ?
चाणक्य : देश-प्रेम, मानव-कल्याण व्रत क्या प्रेम नहीं है ? .....ज्ञान आते ही यौवन चला जाता है। जब तक माला गुंथी जाती है, फूल कुम्हला जाते हैं। गुरु ने कहा था, समस्त ज्ञान अहंकार है, हृदय को मरुभूमि बना देनेवाला।"[6]

राजा वही है, जो अपनी प्रजा के कल्याण के लिए प्रयासरत रहता है। चाणक्य के मतानुसार राजा का कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं होता है और न ही उसकी कोई व्यक्तिगत इच्छा होती है। प्रजा का हित और कल्याण ही उसका जीवन है। प्रजा की इच्छा ही उसकी इच्छा है। डॉ. लाल ने चाणक्य के माध्यम से रजसत्ता को निर्देश दिए हैं। "…. यह न समझो कि तुम सर्वज्ञ हो। राजशक्ति को पाकर मनुष्य मदमस्त हो जाता है, अंधा हो जाता है। तुम सदा बडों का संग करो। तुम्हारे राज्य में जो भी विद्वान आचार्य हो, कुलमुख्य हो, जनपदों और गणों के वृद्ध नेता हो, उनकी सम्मति को ध्यान से सुनो, उनके विचारों का आदर करो और उनकी प्रज्ञा के सम्मुख अपनी बुद्धि को उत्कृष्ट न समझो। …. राजा बनकर तुम्हें भोग-विलास में नहीं फँसना है, तुम्हें अपने को कठोर नियंत्रण में रखना है। भोग-विलास और नाच-रंग का तुम्हारे जीवन में कोई स्थान नहीं है। यदि तुम उत्थान के लिए प्रयत्नशील न होगे, तो तुम्हारा विनाश तो निश्चित है। इसके विपरीत यदि तुम निरंतर उद्यम और उत्थान में तत्पर रहे, तो सब अर्थ और संपदा तुम्हें प्राप्त हो जाएगी।"[7] भोग-विलास ही सबकुछ मानकर उसे पाने हेतु अपनी मर्यादा तोडनेवाले शासकों के लिए यह संदेश बहुत मायने रखता है।

आज की राजनीति देखने से स्पष्ट होता है कि यह पैतृक संपत्ति ही है। दादा-बाप-बेटा, बेटी-पौत्र, पौत्री इस प्रकार वंश परंपरागत रूप में सत्ता हस्तांतरित हो रही है। कोई भी उसे छोडना नहीं चाहता है। बाप-दादाओं ने किए हुए त्याग की पूँजी के बल पर आज के नेता सत्ता में बने रहना चाहते हैं। ऐसे नेताओं के लिए चाणक्य का व्यक्तित्व आदर्श हो सकता है। सबकुछ का अधिकारी होकर भी चाणक्य अंत मे सबकुछ त्यागकर चल पडता है। चंद्रगुप्त का यह कथन उनकी विरागी वृत्ति को ही स्पष्ट करता है - "यह गुरु है। इसके लिए न धन-वैभव का कोई मूल्य है, न राजनीति का। ज्ञान ही एकमात्र संपत्ति है और त्याग ही एकमात्र बल।"[8]

संपूर्ण नाटक में कर्ता है चाणक्य, भोक्ता है चाणक्य और द्रष्टा है चाणक्य। फिर भी अंत में वह मुक्त है। उसे कुछ छोडने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि सबकुछ अपने आप उससे छूट जाता है। इतना निर्मोह, निर्मम त्याग आज हमारे किसी भी नेता अथवा शासक के पास नहीं है। चाणक्य जैसे मँझे हुए नेतृत्व द्वारा "नाटककार पूरी गंभीरता से विडंबित इन स्थितियों को फोकस कर 'चाणक्य' को 'गुरु' के रूप में नाटक की आँख बनाता है और उन पेचीदगियों को गुरु के माध्यम से सुलझाने की कोशिश करते हैं, जो शूलगाँठ बनी आज रिस रही हैं।"[9]

चाणक्य जैसे द्रष्टा गुरु से अपने को, अपने परिवेश, अपने समाज एवं देश को देखने की दृष्टि डॉ. लाल को मिली। उसी द्रष्टा गुरु को पाने और दिखाने का प्रयास डॉ. लाल ने 'अरुण कमल एक' नाटक द्वारा किया है। उन्होंने चाणक्य के माध्यम से एक आदर्श, दूरदर्शी एवं द्रष्टा नेतृत्व हमारे सम्मुख उपस्थित किया है।

संगठन का अभाव

संगठन एक ऐसी शक्ति है, एक ऐसा महामंत्र है जो किसी भी जाति, समूह तथा राष्ट्र को बलवान बना देता है। राष्ट्र को विकास की तरफ गतिमान कर देता है। भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी, बहुजाति राष्ट्र है। अत: हम निसंदेह रूप से कह सकते हैं कि संगठितता यानी एकता हमारे लिए महामंत्र के समान है। आज हम जितने भी विकसित राष्ट्र देखते हैं, वे अपनी जाति, धर्म की संकुचित दीवारों को तोडकर एकत्र आए हैं। तभी तो वे इतने विकसित हो पाए हैं। हमारे देश में लोकतंत्र है। लोकतंत्र में तो संगठन अत्यावश्यक है। इस संदर्भ में डॉ. वसंतराव मोरे का मत दृष्टव्य है, "संगठन शक्ति किसी भी कालखंड में महत्त्वपूर्ण होती है। किसी भी राष्ट्र का रक्षण और उत्कर्ष संगठन शक्ति के बिना नहीं हो सकता। ..... औद्योगिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासकीय और शिक्षा क्षेत्र में संगठन कौशल के आधार पर ही हम सफलता प्राप्त कर

सकते हैं। संगठन कौशल आज अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गया है।"[10] स्पष्ट है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में संगठन महत्त्वपूर्ण हो गया है। कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। राष्ट्रहित के लिए भी संगठन शक्ति की उपासना अनिवार्य है। जनता की असंगठितता का लाभ शत्रु उठाता है। असंगठित लोगों को संगठित करके शत्रु के विरोध में खडा करने से शत्रु को पसीना छूट जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक राष्ट्रों ने संगठित शक्ति के बल पर ही शत्रु राष्ट्रों को पराजित किया है।

चाणक्य देखते हैं कि आर्यावर्त्त खतरे में है। तब वे अपने समस्त शिष्यों को बाहर जाकर अपना परिवेश देखने के लिए कहते हैं। ताकि वे यथार्थ क्या है देख सके, उससे जुड सके। अखंड भारत अर्थात् आर्यावर्त्त की स्थापना चाणक्य के जीवन का लक्ष्य था। इसीलिए छोटे-बडे का भेद भूलकर वे सभी से सहयोग लेने की बात करते हैं। कारण किसी एक जाति, धर्म अथवा समूह के सैनिकों से विशाल साम्राज्य स्थापित नहीं किया जा सकता है। आर्यभूमि को यवनों द्वारा पादाक्रांत होने से बचाने के लिए व्यक्तिगत अहं की बलि देना आवश्यक मानते हुए चाणक्य समस्त आर्यावर्त्त को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित करके यवनों का सफलतापूर्वक मुकाबला करते हैं।

चंद्रगुप्त उद्यानपुरी में आर्यों की पताका फहराता है। तत्पश्चात वह विश्राम करता है। तब चाणक्य कहते हैं - "हिमालय से समुद्रपर्यंत सहस्र योजन विस्तीर्ण यह आर्यभूमि जब तक एक संगठन में संगठित नहीं हो जाएगी, हमारा कार्य पूर्ण नहीं होगा। यवन लोग पुनः भारत पर आक्रमण कर सकते हैं। .... यदि भारत एक न हुआ, तो उसके विविध जनपदों के लिए यवन-आक्रमण का मुकाबला कर सकना सुगम नहीं होगा।"[11]

इससे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए सभी को अपने तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थों को छोडना है। वर्तमान भारत में अनेक संप्रदाय एवं विभिन्न जीवन प्रणालियाँ हैं। इस विभिन्नता में, अनेकता में एकता को बनाए रखने में ही हम सभी का हित है। राष्ट्रोद्धार तथा एकसंघ भारतीय समाज निर्मिति के लिए एकता अनिवार्य है।

निष्कर्ष

व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु देश की निलामी करनेवाले नेताओं की हमारे देश में कमी नहीं है। दूसरी तरफ अपनी कुर्सी बनाए रखने के लिए समाज में फूट डालनेवालों की, हमें आपस में लडवाकर तमाशा देखनेवालों की भी कमी नहीं है। सीमा पर युद्धसदृश स्थिति है। हमारी फूट, असंगठितता का लाभ शत्रु न उठाए तो वह कैसा शत्रु ? हमारी असंगठितता का उत्तर ही नाटककार ने दिया है, चाणक्य द्वारा।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. नरनारायण राय, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्यसाधना, पृ. 106-107।
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, अरुण कमल एक, भूमिका से।
3. वही, पृ. 6।
4. वही, पृ. 30।
5. वही, पृ. 65।
6. वही, पृ. 54।
7. वही, पृ. 78-79।
8. वही, पृ. 88।
9. डॉ. वीणा गौतम, हिंदी नाटक : आज तक, पृ. 282।
10. डॉ. वसंत मोरे, शिवाजी की साहित्यिक प्रतिमा : कितनी सही, कितनी गलत, पृ. 662-663।
11. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, अरुण कमल एक, पृ. 63-64।